# रघुवंश महाकाव्य में मानव-मूल्यों की अवधारणा

**डॉ0 राजेश कुमार**
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
फिरोज़ गाँधी कॉलेज रायबरेली (उ0 प्र0)

**सारांशिका**

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के चमत्कृत मणितुल्य महाकवि है। कालिदास की रचनाओं में रघुवंश महाकाव्यं असाधारण अभूतपूर्व महत्वशाली काव्य ग्रन्थ है। भारतीय आलोचना के क्षेत्र में रघुवंश महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रन्थ के रूप में समादृत है। कालिदास के नाम के साथ प्रयुक्तं रघुकारः (रघुवंश का रचयिता) यह विशेषणाभिधान उक्त महाकाव्य के अप्रतिम महत्व का सूचक है। रघुवंश महाकाव्य का मूल स्त्रोत आदि कवि वाल्मीकि के आदि काव्य रामायण से लिया गया है। रघुवंश महाकाव्य में सम्राट रघु के पूर्वजों तथा परवर्ती वंशजों के चरित्र का विस्तृत सार्वभौम चित्रण है। रघुवंश महाकाव्य में वर्णित दिलीप, रघु, अज, दशरथ आदि के चरित्रों में निगूढ़ मानव मूल्यों का यथार्थ चित्रण किया है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम मानवमूल्यों का स्वरूप भी समझना आवश्यक है, तभी रघुवंश महाकाव्य में अन्तर्निहित मानवमूल्यों की प्रामाणिकता सिद्ध हो सकती है।

**मुख्य शब्दः** रघुवंश महाकाव्य, मानव मूल्य, अवधारणा, प्रयोजन, ज्योतिर्मय

संस्कृत साहित्य में काव्य/महाकाव्य की रचना लोकहित साधन के लिए मानी गई है। काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य–प्रयोजनों का उल्लेख इस प्रकार किया है–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतर–क्षतये।

सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।1

अर्थात् काव्यरचना यशोलाभ, अर्थलाभ, लोकव्यवहारज्ञान, शिवेतर अर्थात् अशिवत्व की क्षति, ब्रह्मानन्द/मोक्षप्राप्ति, तथा कान्तासम्मित उपदेश–काव्य के प्रयोजन है। इन सभी प्रयोजनों में से चतुर्थप्रयोजन शिवेतर (अशिवत्व) क्षति एक महत्वपूर्ण प्रयोजन है क्योंकि संस्कृत के काव्यों, महाकाव्यों में अनेक ऐसे श्रेष्ठ चरित्रों, मानव–मूल्यों का प्रतिपादन होता है, जिनसे अनायास अशिवत्व की क्षति तथा शिवत्व की सिद्धि हो सकती है। विषयबोध की दृष्टि से सर्वप्रथम मानव–मूल्य इन दोनों पदों को प्रकृति–प्रत्ययात्मक व्युत्पत्ति के रूप में समझना प्रासंगिक होगा।

मानव–"मनोरपत्यं पुमान् मानवः"इस अर्थ में मनु शब्द से "तस्यापत्यम्"2सूत्र से अण् प्रत्यय होने से मानव पद निष्पन्न होता है। जो मनु का अपत्य (सन्तान) हो वह मानव है।

मनु धरती के प्रथम शासक राजर्षि हुए है। सम्पूर्ण मानव या मनुष्य मनुके वंशज अपत्य (संन्तान) है। यहाँ यह भी चिन्तनीय है कि अपत्य कौन हो सकता है? "न पतनार्हम् अपत्यम्"अर्थात जो अपने कर्तव्य धर्म से च्युत, पतित न हो वह अपत्य है। निष्कर्ष यह है कि कर्तव्य धर्म का ही अविकलरूप से पालन करना मानवता है। मनु या मानव कौन हो सकता है– इस सम्बन्ध में ऋग्वेद का सन्देश है–

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्षधियाकृता।

अनुल्बणं वयत जोगुवामयो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।3

मन्त्र को स्पष्ट समझने के लिए मन्त्र के पदों की यथाक्रम योजना (अन्वय) तथा पदों के अर्थों का विशदीकरण प्रासंगिक है–"रजसः तन्तुं तन्वन् भामुम् अन्विहि, धिया कृता न ज्योतिष्मतः पथो रक्ष, जोगुवाम् अनुल्वणम् अपःवयत, मनुःभव, दैव्यं जनं जनय।

ऋग्वेद के उक्त मन्त्र का सन्देश इस प्रकार है–जो लोक–तन्तु का विस्तार करता हुआसूर्य (प्रकाश) का अनुसरण करता है, अर्थात लौकिक कर्मश्रंखला और कर्तव्य धर्म कर्म का विस्तार करता हुआ, सूर्य का अनुसरण करे, वह मानव है। सूर्य सदा अपनी धुरी पर स्थित रहता है, अपने प्रकाश से सम्पूर्ण मण्डल को प्रकाशित करता है, अपने आकर्षण से अपने समस्त ग्रहोपग्रहों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। मानव वही है जो सदा अपने धर्मधुरी पर सदा सतत अवस्थित रहे, मानव मण्डल में मानवता व मानवधर्म का प्रकाशन करे, तथा अपनी पवित्र–सेवाओं से मानवमात्र को अपनी ओर आकृष्ट करे।

बुद्धि–विवेकपूर्वक पूर्वज ऋषि मुनियों द्वारा सम्पादित ज्योतिर्मय मार्गों का पालन करता हुआ उनकी रक्षा करे। मानव को चाहिए विद्वानों द्वारा सुनिष्पादित मानव जीवन के ज्योतिर्मय पथों की रक्षा करे। उन ज्योतिर्मय सुपथों को विलुप्त न होने दे। मेधावी मानवों ने समस्त मानव समुदाय के लिए जीवन के जो अनुभूत और श्रेष्ठ आदर्श प्रतिष्ठापित किये है, जो मानवीय मर्यादाएँ संस्थापित की है, उनपर स्वयं चलना और दूसरों को भी चलाना यही ज्योतिर्मय पथों की रक्षा करना है।

मनुष्य को चाहिए कि ऋजुतापूर्वक निष्कपटभाव से ऋजु–अकुटिल कर्मों का पालन करे। जो ऋजु–अकुटिल कर्म करते है वे सदा उलझलरहित और ऋजुतामय सार्थक होते है। इससे स्पष्ट है कि सूर्यानुसरण, ज्योतिष्पथिकता और ऋजुता (निष्कपटता) यह तीन मानव के लक्षण है। जिसमें उपर्युक्त तीन गुण हो वह ही यथार्थतः मानव है।

मूल्य–सामान्यतः समाज में मूल्य शब्द "कीमत", महत्व आदि अर्थों में प्रचलित है। क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि में विनिमय (आदान–प्रदान) ही

समस्त व्यवहारों का आधार है। किसी से कुछ लेकर बदले में उसे कुछ देना उसका मूल्य है।

किन्तु काव्यों, शास्त्रों, साहित्य आदि में मानव के साथ जुड़ कर जब "मूल्य" का प्रयोग होता है, तब मूल्य शब्द चारित्रिक गुणों के उत्कर्ष या महत्व का द्योतक हो जाता है।

"मूल्य" के अर्थ तथा उसकी प्रासंगिकता सुस्पष्ट बोध के लिए उसके प्रकृति–प्रत्यय का चिन्तन अपेक्षित है। भगवान् महर्षि पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी ग्रन्थ में मूल्य पद की निष्पत्ति इस प्रकार की है–"यैर्मूलम् आबृह्यते उद्यम्यते तेमूल्याः।"4जिनके द्वारा मूल का आबृंहण उद्यमन समुन्नयन हो वे मूल्य कहलाते है। पाणिनीय धातुपाठ के अनुसार बृह् धातु उद्यम अर्थ (बह् उद्यमे) में पठित है। उद्यम का अर्थ ऊपर उठाना है। अतः आबृंहण अर्थ में मूल शब्द से यत् प्रत्यय करने से मूल्य शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पातिलम्य अर्थ के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जिनके द्वारा मानव के मूल अस्तित्व का, जीवन का उद्यमन, उन्नयन हो, वे मानवमूल्य है। यहाँ यह भी घ्यान देने योग्य है कि मानव का मूल आधार उसका अपना चरित्र तथा समाज है। समाज के बिना मानव अस्तित्व की रक्षा हो ही नहीं सकती। पूर्वचर्चित ऋग्वेदीय मन्त्र "तन्तुं तन्वन्"आदि में जिन तीन"सूर्यानुसरण, ज्योतिष्यथिकता और ऋजुता" गुणों की चर्चा की गई है वे तीनों मानव के सामाजिक मौलिक धर्म की ही व्याख्या करते है। अतः मानव मूल्य वे है, जिनके द्वारा मानव का सामाजिक तथा वैयक्तिक दोनों प्रकार का उद्यमन हो।

ऐसे आदर्श मानवों तथा मानवमूल्यों की अवधारणाओं से संस्कृत साहित्य की विधाएँ काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पूकाव्य, नाटकादि तथा गद्यसाहित्य सभी मानव मूल्यों की अवधारणाओं से ओत–प्रोत है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के चमत्कृत मणितुल्य महाकवि है। कालिदास की रचनाओं में रघुवंश महाकाव्यं असाधारण अभूतपूर्व महत्वशाली काव्य ग्रन्थ है। भारतीय आलोचना के क्षेत्र में रघुवंश महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रन्थ के रूप में समादृत है। कालिदास के नाम के साथ प्रयुक्तं रघुकारः (रघुवंश का रचयिता) यह विशेषणाभिधान उक्त महाकाव्य के अप्रतिम महत्व का सूचक है।

रघुवंश महाकाव्य का मूल स्त्रोत आदि कवि वाल्मीकि के आदि काव्य रामायण से लिया गया है। रघुवंश महाकाव्य में सम्राट रघु के पूर्वजों तथा परवर्ती वंशजों के चरित्र का विस्तृत सार्वभौम चित्रण है। रघुवंश महाकाव्य में वर्णित दिलीप, रघु, अज, दशरथ आदि के चरित्रों में निगूढ़ मानव मूल्यों का यथार्थ चित्रण किया है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम मानवमूल्यों का स्वरूप भी समझना आवश्यक है, तभी रघुवंश महाकाव्य में अन्तर्निहित मानवमूल्यों की प्रामाणिकता सिद्ध हो सकती है। जीवन में धन सम्पत्ति आदि भौतिक वस्तुओं के उपभोग के सम्बन्ध में ईशावास्योपनिषद् का स्पष्ट निर्देश है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेल त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम।। 5

ईशावास्योपनिषद के उपर्युक्त मन्त्र में त्याग (अनासक्त) भाव का निर्देश देते हुए किसी दूसरे का धन न ग्रहण करने का प्रेरक सन्देश दिया गया है क्योकि दूसरे का धन ग्रहण करने के मूल में लोभ छिपा होता है, जो जीवन का आबृंहण, उद्यमन, उन्नयन नहीं करता अपितु जीवन को समूल नष्ट कर देता है। त्याग या अनासक्ति भाव समाज के समुन्नयन से जुड़ा हुआ है। व्यक्ति और समाज का गहरा अविनाभाव सम्बन्ध है । व्यक्ति की उन्नति वांछनीय है, परन्तु इसकी वास्तविक उन्नति स्थिति सामाजिक उन्नति पर आधारित है। व्यक्तियों का संगठित अनुशासित समुदाय ही समाज है। सामाजिक उन्नति के बिना किसी की भी वैयक्तिक उन्नति नहीं हो सकती। प्रत्येक मनुष्य की त्यागात्मक भावप्रवृत्ति से ही सामाजिक और वैयक्तिक उन्नति साध्य है इस दृष्टि से त्याग अनासक्ति, लोभहीनता आदि प्रशस्त मानव मूल्य है। त्याग के अतिरिक्त मितभाषिता, सत्य, विद्याभ्यासादि वे श्रेष्ठ मानवमूल्य हैं, जो जीवन के अभ्युदय के लिए अनिवार्य है। इन मानवमूल्यों का क्रियान्वयन रघुवंश महाकाव्य के पात्रों में आरम्भ से दृष्टिगत होता है। रघुवंशीय राजाओं के चरित्र इन महनीय मानवमूल्यों से मण्डित थे। कविवर कालिदास ने आरम्भ में ही रघुवंश राजाओं के चरित्रों का उल्लेख करते हुए कहा है–

महाकवि कालिदास रचित रघुवंश महाकाव्य के राजा भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते है। "वे शैशवकाल में विद्याभ्यास करते थे, यौवन में ही सन्तानोत्पत्ति के लिए विषयाभिलाषी होते थे, वृद्धावस्था में मुनिवृत्तिधारणा करते थे और अन्त में योगसाधन के द्वारा देहत्याग करते थे।6 यह रघुवंशकालीन महनीय मानवमूल्यों से मण्डित आदर्श भारतीय समाज की अपनी मौलिक विशेषता है। उपनिषदों में धर्म के तीन स्कन्ध प्रतिपादित है– यज्ञ, अध्ययन और दान। तीनों ही मानवमूल्यों के कोश है। दान, त्याग व अनाशक्ति का ही भाषान्तरित रूप है। जब वस्तु के प्रति लगाव या आसक्ति नहीं होती तभी दान किया जाना संभव है, वही त्याग है।

रघुवंश में आदर्श मानवमूल्यों का सजीव प्रेरक मार्मिक दृश्य उस समय उपस्थित होता है, जब कुलपति आचार्य वरतन्तु के शिष्य कौत्स गुरूदक्षिणा के लिए देय धनराशि की याचना के लिए "विश्वजित्" यज्ञ में अपनासर्वस्व दान कर चुके सम्राट रघु के पास पहुँचे। सम्राट रघु ने मिट्टी के पात्रों में उनके पाद्य अर्ध्य तथा जलपानादि की व्यवस्था की। यह देख कर कौत्स निराश हो गए। राजा के आगमन का कारण पूछने पर कौत्स ने मिट्टी के पात्र देखकर निराशा प्रकट करते हुए आने का प्रयोजन बताना अस्वीकार कर दिया। फिर भी राजा रघु के अतिशय आग्रह करने पर कौत्स ने बताया– गुरू वरतन्तु से चौदह विद्याएँ पढ़ी है, उनकी गुरूदक्षिणा के रूप में चतुर्दश सहस्त्र स्वर्णमुद्राएँ समर्पित करनी है– इसी प्रयोजन से मैं आप की सेवा में आया हूँ। उनका प्रयोजन सुन कर महाराज रघु ने उन्हें रात्रि विश्राम करने की प्रार्थना की तथा सेनापति को बुलाकर ब्रह्ममुहुर्त में कुबेर पर आक्रमण का आदेश दिया। महाराज रघु की योजना को जानकर कुबेर ने मध्य रात्रि में ही राजभवन के प्रांगण में स्वर्णमुद्राओं की वर्षा कर दी। इस घटना की सूचना पाकर महाराज रघु ने प्रातः कौत्स को बुलाकर यथेष्ट स्वर्णमुद्राएँ ले जाने के लिए कहा किन्तु कौत्स ने उतनी ही स्वर्णमुद्राएँ ली जितनी गुरूदक्षिणा के रूप में देनी थी।

इस उपर्युक्त सम्पूर्ण घटनाक्रम से जिन मानवमूल्यों का स्पष्ट परिचय मिलता है–उनमें राजा की उदार दानशीलता, राजा की प्रजापालन की अप्रमत्त प्रवृत्ति तथा कौत्स की लोभहीनता। इन दोनों मानवमूल्यों के लिए साकेतनिवासियों ने उन दोनों ही का हार्दिक अभिनन्दन किया–

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्धसत्वौ।

गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी, नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।।7

आवश्यकता से अधिक धन न लेने वाला याचक कौत्स तथा याचक की इच्छा/आवश्यकता से अधिक देने वाला राजा–यह दोनों ही साकेतनिवासी प्रजाओं के अभिनन्दनीय बन गए।

इसके अतिरिक्त प्रजापालन, राजोचित कर्तव्यधर्म का निर्वाह–यह भी राजा के द्वारा आचरणीय वन्दनीय मानवमूल्य है। राजा के पास कौत्स के पहुँचने पर, राजा के कुशल क्षेम पूछने पर कौत्स ने उत्तर दिया–

सर्वत्र मो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतहत्वय्य शुभं प्रजानाम।

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।।8

अर्थात जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के रहते हुए अंधेरा नहीं ठहर पाता, वैसे ही आप के राज्यशासन के होते हुए प्रजाओं का अहित दुःख कैसे हो सकता है। राजा के ऐसे सुशासन से राजा के चारित्रिक मानवमूल्यों का सुस्पष्ट परिचय मिलता है।

सम्राट रघु का विश्वजित यज्ञ करना, यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर देना, यहाँ तक कि दैनिक उपयोग की वस्तुओं सोना, चॉदी के पात्रादि का भी दान कर देना राजा रघु के अनासक्ति, दान, यज्ञ आदि का आयोजन महान् मानवमूल्यों के क्रियान्वयन की अवधारणा प्रस्तुत करता है। 9 साधारण प्रजा के रूप में गुरूदक्षिणाधनार्थी कौत्स के पहुँचने पर राजा का निरहंकारभाव से विनम्रतापूर्वक उनसे मिलना, उनकी समस्या सुनकर उसके त्वरित समाधान का आश्वासन देना इत्यादि महनीय मानवमूल्यों की अवधारणा का द्योतक है।

मानवजीवन पुरूषार्थ–सिद्धि का महत्वपूर्ण केन्द्र है। मानवजीवन में नैराश्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं होता। क्योकि नैराश्यवाद मानवमूल्य के विरूद्ध है। नैराश्यवाद अकर्मण्यता की ओर प्रेरित करता है। संसार परमात्मा की सृष्टि है। परमात्मा की सृष्टि को निःसार बताकर निराश होकर बैठ जाना मानवमूल्य के विरूद्ध तो है ही, प्रभु की काव्यमयी सृष्टि का अपमान भी है।

जो जीवन हम बिता रहे हैं, तथा जिससे हम अपना अभ्युदय प्राप्त करते हैं, उसे सारहीनबताना आत्मघात के तुल्य है। कालिदास ने स्पष्ट कहा है–"मरण तो देहधारियों की प्रकृति है, जब कि जीवन विकृतिमात्र है।"10 अतः आशावाद, कर्मठता और उत्साह–यह महान् मानवमूल्य है। इस प्रकार रघुवंश मानवमूल्यों की अवधारणाओं का महान कोष है।

**संदर्भः–**


1. काव्यप्रकाश– प्रथम उल्लास
2. अष्टाध्यायी– 4–1–92
3. ऋग्वेद– 10–53–6
4. अष्टाध्यायी –4–4–88
5. ईशावास्योपनिषद 1–1
6. त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
   यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।
   शौश्वेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
   वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेलान्ते तनुत्यजाम्।।
   रघुवंश महाकाव्य 1–7–8
7. रघुवंश महाकाव्य 5–20
8. रघुवंश महाकाव्य 5–13
9. तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्प्राणितकोशजातम्।
   उपात्तविद्योः गुरूदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः।।
   रघुवंश महाकाव्य 5–1
10. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यतेबुधैः।
    रघुवंश महाकाव्य 8–87